

॥ ॐ ॥

पंचकोश विवेक

गुरुस्तुति

त्रिभंगी छन्द ।

(१)

जय जय गुरु स्वामी, अंतर्दामी, सच्चित् आनंद राशी ।
सचराचर नायक, जन सुखदायक, माया पर अविनाशी ॥
जय करुणा सागर, सब विधि नागर, शरणपाल भगवाना ।
भक्तन हितकारी, नर तनु धारी, गावत वेद पुराणा ॥

(२)

जय भव भय भंजन, नित्य निरंजन, गुणातीत गुणखानी ।
जय अचल अकामा, पूरण कामा, मानद आप अमानी ॥
जय कमल विलोचन, संशय मोचन, ब्रह्म रूप जग त्राता ।
परिपूरण त्यागी, जन अनुरागी, चारि पदारथ दाता ॥

(२)

(३)

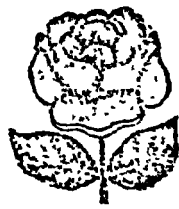
जानत सव विद्या, हरत अविद्या, अकल सकल कल पंडित ।
नहिं लेश विषमता, अविचल समता, यकरस ज्ञान अखंडित ॥
कोमल चित योगी, विषय वियोगी, सुखकर चिंता हर्ता ।
निज सेवक संगी, सदा असंगी, कर्ता महा अकर्ता ॥

(४)

निर्भय भय नाशक, ज्ञान प्रकाशक, सेवत नर बड़ भारी ।
ब्रह्मादिक देवा, करते सेवा, चरण कमल अनुरागी ॥
प्रभु निश दिन ध्याऊँ, गुणगण गाऊँ, कामादिक हर लीना ।
यह मन क्रम वाचा, सेवक सांचा, जन अपना कर लीना ॥

(५)

पामर अविचारी, मिथ्याचारी, सत्य असत्य न जाने ।
सुत वित लिपटाने, निपट अयाने, किं सद्गुरु पहिचाने ॥
नहिं सद्गुरु चीन्हा, अति ही दीना, लख चौरासि भटक्ते ।
गुरुपद चित दीना, परम प्रवीणा, नहिं कौशल्य ! अटकते ॥



(३)

सुख की खोज ।

गंगा जी का निर्मल जल गम्भीर स्वभाव से बह रहा है, भूमि समतल होने से जल का शब्द नहीं होता, प्रातःकाल का समय है, संसार भर में शान्ति है, तो भी पच्ची दिन होने के आनन्द में कोलाहल कर रहे हैं। इस स्थान से बस्ती कुछ दूर है। इस प्रातःसंध्या के समय में भी गंगा तट पर संध्योपासक दिखाई नहीं देते। एक पथिक जो कुछ रात्रि शेष रहने पर ही शहर से चल दिया था यहां आया और शान्ति दायक स्थान देखकर उसने चारों दिशाओं में दृष्टि डाली तो कोई मनुष्य दिखाई न दिया। थोड़ी दूर पर उसने सघन वृक्षों से घिरा हुआ एक दिव्य स्थान देखा। उसको देख कर उस के अन्तःकरण में स्वाभाविक प्रेम का आविर्भाव हुआ और वह गंगा तट को छोड़ कर दिव्य स्थान की तरफ चला। ज्यों ज्यों वह स्थान समीप आता था त्यों त्यों उसका हृदय प्रफुल्लित होता जाता था। दूर से कोई मनुष्य तो दिखाई नहीं दिया परन्तु ऊंचे वृक्ष में बांधी हुई भगवां ध्वजा फहराती दिखाई दी जिससे उसने अनुमान किया कि यह अवश्य ही साधुओं का स्थान है। तुरन्त उसने कषाय वस्त्र धारण किये हुए कुछ सन्यासी देखे और समीप जाने से मात्तूम हुआ कि जगदेश्वरी शक्ति (कुदरत) वहां साइनबोर्ड (Sign Board) का काम कर रही है ! आने वालों को शान्तिआश्रम बता रही है। पथिक विचारने लगा “बहुत दिनों से जिस परिश्रम में मैं लग रहा हूँ और जो आज तक सफल

नहीं हुआ, इस स्थान पर उसके सफल होने की सम्भावना है ।” स्थान के चारों तरफ थूहड़ की घनी बाड़ लगी हुई थी, केवल एक फाटक भीतर जाने को था, उसमें होकर पथिक भीतर गया । भीतर घुस कर उसने एक छोटा सा रमणीक बगीचा देखा । उसको देखता हुआ वह आगे बढ़ा तो देखा कि कपाय वस्त्र धारण किये हुए एक मनुष्य बगीचे के वृक्षों से सूख कर गिरे हुए पत्तों को एकत्र कर रहा है । पथिक ने उससे ॐ नमो नारायण कर के पूछा “स्थानाधीश्वर महाराज कहां विराजते हैं ?” स्वामी ने कहा “आप सीधे चले जाइये, सामने के बंगले में आपको महाराज के दर्शन होंगे ।” पथिक आगे बढ़ा और बंगले के द्वार पर पहुंच कर उसने देखा कि एक तख्त के ऊपर बाधांवर बिछा हुआ है, पीछे एक मखमल का गदेला रक्खा है, तख्त पर दिव्य श्वेत रंग के शरीर वाला, देखने में चालीस पैंतालीस वर्ष की आयु वाला, भव्य आकृति वाला, भगवां वस्त्रधारी एक सन्यासी बैठा हुआ है, और तख्त के नीचे बिछी हुई चटाई पर दो सन्यासी और बैठे हुए पुस्तक पढ़ रहे हैं । पथिक ने भीतर जा कर ॐ नमो नारायण का उच्चारण किया और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके वह भी पड़ी हुई चटाई पर बैठ गया । पाव घड़ी तक तो संत पढ़ने वाले शिष्यों को समझाते रहे । पाठ पूर्ण होने के पश्चात् उन्होंने पथिक से कहा “आप का आना इस स्थान पर किस प्रकार हुआ ? आप दूर देश के रहने वाले जान पड़ते हैं ।” पथिक ने कहा “महाराज ! आपका कहना सत्य है, मैं देश देशान्तरों में बारह वर्ष से घूम रहा हूँ,

वन, ग्राम, शहर अनेक प्रकार के स्थानों और देशों में मैं घूमा हूँ, परन्तु जिस वस्तु की मुझे खोज है वह मुझे कहीं नहीं मिली। मिलना तो एक तरफ रहा, वह वस्तु कहां है इसका भी पता नहीं लगा। उसी की खोज में मैं यहां आया हूँ।” संत ने कहा “वह ऐसी कौन सी वस्तु है?” पथिक ने कहा, “आप संत महात्मा हैं, इस स्थान पर आपके समीप आने से मुझे ऐसा भास होता है कि मेरी वस्तु का पता आपके पास मिल जायगा। मेरी वस्तु सुख है, मैं सुख की खोज में हूँ। सुख सम्बन्धी मुख्य चार बातें हैं:—(१) सुख क्या वस्तु है? (२) सुख किसमें है? (३) सुख का स्थान कौन सा है? और (४) सुखी कौन है?” संत ने स्मितहास्य से कहा “वाह! आपने वस्तु भी अच्छी निकाली! बारह वर्ष खोजने पर भी आपको उसका पता न लगा! बारह वर्ष में जो जो प्रयत्न आप कर चुके हैं वह सुनाइये।”

पथिक कहने लगा, “महाराज! मैं जाति का ब्राह्मण हूँ, ब्राह्मण आज कल जिस प्रकार अपनी जीविका चला रहे हैं, उस प्रकार के व्यवहार चलाने में वाल्यावस्था से ही मुझको घृणा है। मैंने देखा कि यजमान वृत्ति में बहुत कष्ट है, हर किसी को सेठजी, सेठ साहब, लाला जी, बाबू साहब, अन्नदाता कहना पड़ता है, हर एक के सामने हाथ फैलाना पड़ता है, दीनता दिखानी पड़ती है। यह सब करने पर भी इस समय में योग्यतानुसार व्यवहार चलना कठिन है, धन की पूर्ति नहीं होती। मृतक के निमित्त का दान लेना मुझे बहुत बुरा लगता है, ब्राह्मणों में होने वाले ब्राह्म-

एतत्त्वं से हम रहित हैं। जिस ब्राह्मणत्वं से ब्राह्मण अभिमुख वाला—सब प्रकार के दान की आपत्तियां जलाने वाला होता है वह हममें कहां है ? सामर्थ्य रहित होकर दान लेने से दान लेने वाला ही दग्ध होता है ! मेरे पिता ने मुझको यजमान धृति के कार्य में नियुक्त करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु मैंने उस कार्य को न किया। संस्कृत पढ़कर पंडिताई से व्यवहार चलाना भी ठीक नहीं समझा, संस्कृत पढ़े हुए पंडितों को मैंने देखा है, वे प्रायः कंगाल ही देखने में आये हैं। जो कोई धनवान पाये तो वे विद्या से धनवान नहीं हुए, परन्तु छल प्रपंच से धनवान् हुए जाने गये। आज कल विद्या के निमित्त विद्या नहीं पढ़ी जाती। छल से लोगों को ठग कर मैं धनवान् होना नहीं चाहता। मैं भाषा और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हूँ परन्तु पंडिताई से व्यवहार चलाना उचित नहीं समझता। सच्ची पंडिताई और ब्राह्मणत्वं की इस काल में पूछ नहीं है। पिता मांग जांच कर कुटुम्ब का पालन पोषण करते थे, उन्होंने मेरा विवाह कर दिया था। माता और पिता के देहान्त होने से मैं और मेरी स्त्री दो प्राणी रह गये। किसी प्रकार के उद्यम बिना काम न चलता देखकर एक बजाज की दुकान पर मैंने नौकरी कर ली। स्त्री नित्य प्रति कलह किया करती थी। मैंने सोच रक्खा था कि खर्च की तंगी के कारण वह कलह किया करती है, कुछ वेतन बढ़ जाने से शान्त हो जावेगी। दुकान का काम मैं मली प्रकार प्रमाणिकता से करने लगा। कुछ ही मास में मालिक ने मेरी योग्यता जान कर वेतन दूना करके मुझे मुख्य मुनीम बना दिया। अब मुझे ५० रु० मिलने लगे थे परन्तु इस